**Knowledgeable Research** (An International Peer-Reviewed Multidisciplinary Journal) **ISSN 2583-6633**
**Available Online: http://knowledgeableresearch.com Vol.03, No.2, September, 2024**

# हिन्दी उपन्यास और नवदशकीय नारी चेतना

**पुष्प लता**
असिस्टेंट प्रोफेसर– हिन्दी
राजकीय महाविद्यालय उन्नाव

**********

***सारांश –***

*हिन्दी उपन्यास ने अपने उद्भव एवं विकास की यात्रा में अनेक मंज़िलों और सोपानों को पार किया है। उसकी विकास यात्रा में अनेक मोड़ आये हैं, जिनको अपने में समेटती हुई अनेक अवरोधों से टकराती हुई, अनेक मान्यताओं को ग्रहण करती हुई हिन्दी उपन्यास की विपुल धारा एक विशाल नदी की तरह निरन्तर व्यापक होती चली गयी। उपन्यास की इस लम्बी यात्रा में सम्भवतः सबसे महत्वपूर्ण मोड़ नवें दशक का प्रादुर्भाव काल है। इस काल खण्ड को भारतीय जनमानस की बदलती हुई स्थितियों का युग कहा जा सकता है। मध्यमवर्गीय चेतना की दृष्टि से नवाँ दशक हिन्दी उपन्यास के इतिहास में महत्वपूर्ण कालखण्ड है। आम आदमी ने स्वतंत्रता की उपलब्धियों को लेकर जो सपने देखे थे वह एक दशक बीतते न बीतते बिखर जाते हैं। रामराज्य का स्वप्न देखने वाले आम जनमानस को मिलता है आजादी के नाम पर स्वार्थ, शोषण और भ्रष्टाचार, कुण्ठा, हीन भावना, संत्रास का लम्बा सिलसिला। तत्कालीन स्थितियों की इस कटुता को हिन्दी उपन्यासकारों ने तीक्ष्णता के साथ महसूस किया तथा उसकी अनुगूँज हमें नवें दशक के उपन्यासों में सुनाई देती है। स्वातन्त्र्योत्तर काल में हिन्दी उपन्यास यात्रा में एक नया मोड़ आया। भारतीय जनता को जो स्क्त रंजित आजादी मिली। उसने मूल्यों के प्रति उसमें अनास्था उत्पन्न कर दी। उपन्यासकारों की नयी पीढ़ी ने उन स्थितियों को तीव्रता से अपने उपन्यासों में अभिव्यक्त किया। छठे, सातवें दशक में जो भाव अंकुरित हुए थे वे ही आठवें दशक के उपन्यासों में पुष्पित–पल्लवित हुए तथा नवाँ दशक आते–आते एक नवीन उपन्यास राजनैतिक सामाजिक भ्रष्टाचार के प्रति कमर कस कर खड़ा हो गया। इस दशक के उपन्यासों में न केवल बाह्य स्थितियों का अंकन हुआ अपितु मानव मन की अनचाही गहराइयों में पैठ कर मानव व्यवहार का भी सूक्ष्म विश्लेषण किया गया।*

***मुख्य शब्द*** *: उपन्यास, भारतीय जनमानस, भ्रष्टाचार, कुण्ठा, स्वार्थ, शोषण आदि।*

**********

**प्रस्तावना–**

इक्कीसवीं सदी की दहलीज पर हिन्दी की महिला उपन्यासकारों के क्रान्तिकारी आगमन से हिन्दी उपन्यास साहित्य में एक नवीन मोड़ आ गया। भारतीय रूढ़िवादी परम्पराओं के जाल में जकड़ी आधुनिक नारी जाति ने अपने अस्तित्व के अभिरक्षा अभियान में जुटकर विशिष्ट लेखकीय प्रतिभा के माध्यम से स्वयं को अभिव्यक्ति प्रदान की। अभिव्यक्ति की इस स्वतंत्रता और लेखकीय प्रतिभा के प्रतिपादन में नवें दशक की महिला उपन्यास लेखिकाओं का एक विशिष्ट स्थान है। इन उपन्यासकारों ने समय के बदलते मूल्यों के साथ नारी के बदलते स्वरूप को बड़ी खूबसूरती और बेबाकी से रेखांकित किया है।

आधुनिक नारी परम्पराओं और रूढ़ियों से दामन छुड़ाकर अपने अस्तित्व को उजागर करते हुये अपने स्वरूप को स्पष्ट करना चाहती है। पुरूष वर्चस्व

Knowledgeable Research (An International Peer-Reviewed Multidisciplinary Journal) ISSN 2583-6633
Available Online: http://knowledgeableresearch.com Vol.03, No.2, September, 2024

से आक्रान्त नवदशकीय स्त्री अपनी पीड़ा, व्यथा, द्वन्द्व, जीवनसंघर्ष तथा हीनताबोध से मुक्ति पाने के लिये अपनी छटपटाहट को उपन्यासों के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान कर रही है। सम्बन्धों और मर्यादाओं के भीतर इच्छाओं तथा भावनाओं के दमन का वर्णन नवदशकीय महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में सहज रूप से वर्णित मिलता है। नवें दशक में लिखे जाने वाले उपन्यासों में जिसे प्रकार के स्त्री चरित्रों का वर्णन किया गया है वह धीरे– धीरे पश्चिमी दुनिया की वजह से स्त्री–पुरूष समानता की प्रतीति कराता है।[1]

नवदशकीय उपन्यासों की एक प्रमुख विशेषता यह दिखायी देती है कि इस काल की अधिकांश महिला उपन्यासकार अपने अनुभवों को उपन्यासों में आत्मकथात्मक शैली में कहती हैं। कुछ उपन्यासों में वे अनुभव उपलब्धि के रूप में भी वर्णित किये गये है, जो वरण की स्वतंत्रता के अस्तित्ववादी और प्रजातन्त्रवादी दृष्टिकोण के और शोषण मूलक वर्चस्ववादी संस्थानों के विरोध के परिचायक हैं। स्त्रियों के अनेक रूपों के वर्णन में साहसिक, दुस्साहसिक, कायर, चौकन्नेपन से युक्त और साथ ही साथ स्वयं को बदलने और परिवर्तन की आकांक्षाओं से, भर हुआ व्यक्तित्व नवदशकीय उपन्यासों में पाया जाता है।

बीसवीं शताब्दी के अन्तिम दौर के इन उपन्यासों में स्त्रियों के बौद्धिक और शारीरिक चित्रण के लिये (जिससे स्त्री का सम्पूर्ण व्यक्तित्व स्थापित हो सके, तथा उसे टुकड़ों में बांटकर नहीं बल्कि उसकी निजता या अस्मिता का मानव समाज की स्वस्थ, सजग गहरे सामाजिक मूल्य के प्रति जागरूक नारी के रूप में वर्णित किया जा सके) के लिये शताब्दी के नवें दशक में स्त्री और पुरूष दोनों ही उपन्यासकारों ने हिन्दी उपन्यास की विकसित क्षमता का उपयोग ही नहीं किया बल्कि पश्चिमी जगत के प्रसिद्ध उपन्यासों की शैली और शिल्प का भी प्रयोग करने का प्रयत्न किया है। हिन्दी उपन्यास साहित्य में नवदशकीय महिला उपन्यासकारों की संख्या अन्य काल खण्डों की अपेक्षा यदि बहुत अधिक नहीं है, तो बहुत कम भी नहीं है। दिनेशनन्दिनी डालमिया, शशिप्रभा शास्त्री, उषा प्रियंवदा, राजी सेठ, मंजुल भगत, मृदुला गर्ग, चन्द्रकान्ता, कुसुम कुमार, मेहरूनिन्सा परवेज़, चित्रा मुद्गल, मृणाल पाण्डेय ,कमल कुमार, नासिरा शर्मा, निरूपमा सोवती, चित्रा चतुर्वेदी, प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा आदि इस काल खण्ड की प्रमुख महिला उपन्यासकार हैं।

उपन्यास की सफलता इस बात में निहित है कि वह अपने सृजन कारकों से संचालित न होते हुए उसका अतिक्रमण करे। कथा का अतिक्रमण चरित्र करें, परिवेश उन पर हावी न हो, अपने समय की नैतिकता पर उपन्यास की दृष्टि हो और समग्रतः उपन्यास अपने समय को अतिक्रमित करें, तो उपन्यास की सफलता न केवल सुनिश्चित है वरन् यही स्पृहणीय भी है। हिन्दी उपन्यास पर बात करते हुये अक्सर इन बिन्दुओं की उपेक्षा की जाती है और अपने–अपने कारणों से अलग अलग उपन्यासों की चर्चा की जाती है। किसी भी उपन्यास की 'क्लासिकी' का मानक न तो उपने समय की राजनीति हो सकती है और न किसी खास की समस्या, विषय या प्रचलित अवधारणाओं के प्रति पक्षधरता। उपन्यास की उत्कृष्टता का पैमाना नहीं है कि वह अपने पर हावी तात्कालिकता से किस स्तर तक मुक्त है समग्रतः कहना चाहिए कि उपन्यास एक सपने की अभिव्यक्ति है आकाँक्षा का सहर्ष है भविष्य का चेहरा है और कुल मिलाकर अपने समय के प्रश्नों का प्रक्रिया के बीच जूझते व्यक्ति का जीवन है, इसलिए वह स्चे–गढ़े गये उत्तरों का संसार नही हो सकता।[2]

**सामाजिक–सांस्कृतिक पृष्ठभूमि :–**

नवें दशक में हिन्दी उपन्यास का धारा को स्पष्ट रूप से समझने के लिये यदि हम बीते कुछ दशकों को छोड़कर आठवें दशक के उन वर्षों की पर दृष्टि दौड़ाएँ तो दिखायी देगा कि सामाजिक जीवन, प्रशासन तंत्र, राजनीति की स्वार्थपरता, व्यक्ति का

अकेलापन, विकास के नाम पर विनाश को आमंत्रित करती योजनाएँ और अपने भीतर दहकती भावाग्नि को लेकर सार्वजनिकता में भी अकेले पड़ते जा रहे मनुष्यों सहित अनेक पक्षों पर उपन्यासों का सृजन हुआ है। यहाँ जीवन की खोज है इसलिए संवेदना का सम्प्रेषण है, उन घटनाओं के माध्यम से जिनसे जीवन का ताना–बाना जुड़ा है।[3] यद्यपि इस काल खण्ड के अन्त पर परिस्थितियाँ इतनी अस्पष्ट एवं जटिल जान पड़ती है कि पक्ष और विपक्ष की भूमिका का रेखांकन संभव प्रतीत नहीं होता फिर भी लेखन के स्तर पर स्पष्ट प्रयास परिलक्षित होता है। बीसवीं शताब्दी के अंतिम दो दशक ऐतिहासिक सांस्कृतिक दृष्टि से उत्तर आधुनिकता के दबाव के दशक कहते जा सकते है। सूचना प्रौद्योगिकी के प्रचार–प्रसार एवं दृश्य–श्रव्य माध्यमों के व्यापक फैलाव से देश धीरे–धीरे समाप्त होकर केवल काल के रूप में रह गया।

नवदशकीय उपन्यासकारों के उपन्यासों में संबंधो और मर्यादाओं के भीतर इच्छाओं तथा भावनाओं के दमन का वर्णन सहज रूप में मिलता है। हमारे सामाजिक जीवन के दबाव से दूरदर्शन, फिल्म और अन्य संचार माध्यमों में हत्या, बलात्कार, संबंध विच्छेद, तलाक आदि के दृश्य और परिणामों की वृद्धि ने जिस रूप में सामाजिक यथार्थ का संकेत दिया है, उसी रूप में इस दशक के उपन्यासों में भी बढ़ा है।

नवम दशक के उपन्यासों में कथ्य और शिल्प दोनों क्षेत्रों में जो क्रांन्तिकारी परिवर्तन दिखाई देते है, उनके मूल में युवा सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन की प्रतिक्रियाएँ ,युग जीवन के यथार्थ को पकड़ने का प्रयत्न, परिवर्तित परिस्थितियों के अनुरूप आधुनिकता बोध की व्यंजना, उपन्यासकारों के जीवन दर्शन पर उन सबका प्रभाव और तदनुरूप नये उद्देश्यों या लक्ष्यों का निर्धारण परिलक्षित होता है।[4]

**नवदशकीय नारी चेतना का प्लाट–**

नवें दशक के उपन्यासों के प्लाट के भीतर उसकी भूमिका माध्यम के रूप मे न होकर माध्य के रूप में है। अशिक्षित और अपढ़ ग्रामीण और आदिवासी स्त्रियों को जहाँ छठे, सातवें दशक में महन्त, नेता, पुलिस, अफसर या जंमीदार के शोषण और अत्याचार को चुपचाप सहते हुए दिखाया जाता है वहाँ अब उपन्यासों में इन्हें न केवल प्रतिरोध करते हुये बल्कि चालाकी के साथ शोषण को ही अपनी मुक्ति का माध्यम बनाकर सामाजिक सहज ढंग से चुनौती देते हुए दिखाया जाता है। बल्कि यह भी कहा जा सकता है कि नवें दशक से लिखे होने वाले उपन्यासों में स्त्री चरित्रों का वर्णन जिस प्रकार से किया जाने लगा है वह धीरे–धीरे पश्चिमी दुनिया की तरफ स्त्री पुरूष समानता की प्रतीति कराता है।

यद्यपि कुछ स्त्री उपन्यास लेखिकाओं के उपन्यासों में स्त्री विमर्श का प्रभाव स्त्री सशक्तीकरण के रूप में एक सिद्धान्त के रूप में पाया जाता है फिर भी विवशता, लाचारी एवं जातीय मान्यता आदि का वर्णन स्त्री को संघर्ष करता हुआ ही सिद्ध करता है। पहले इस प्रकार के उपन्यासों में स्त्री लेखिकाओं का तो प्रश्न ही नही था, पुरूष लेखक भी साहस नहीं करते थे परन्तु अब ऐसे वर्णन बड़े पैमाने पर विवशता और चयन दोनों ही दृष्टियों से मिलते है स्त्रियाँ स्वयं अपने अनुभवो को उपन्यासो में आत्मवाची शैली में कहती है। कुछ उपन्यासों में वे अनुभव उपलब्धि के रूप में भी वर्णित किये गये हैं तो वरण की स्वतंत्रता के अस्तित्ववादी और प्रजातंत्रवादी दृष्टिकोण के और शोषण मूलक वर्चस्ववादी संस्थानों के विरोध के परिचालक हैं। नारी अस्मिता मात्र व्यक्तिगत लड़ाई नहीं है, सामाजिक लड़ाई भी है । भारतीय नारी के सामने अनेक प्रश्न हैं सैद्धान्तिक भी तार्किक भी, व्यवहारिक भी। वह आज पुराने मिथकों, आदर्शो को तर्क के तराजू पर तौलती किन्तु नयी परिस्थितियों ने उसे नये उत्तरदायित्व भी दिये हैं।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद जो दुनिया निर्मित हुई है, उसमें भारत सहित तमाम औपनिवेशिक समाजों

में स्त्रियों के जीवन व चेतना में महत्वपूर्ण बदलाव आये हैं। स्वयं स्त्री समाज ने युगीन परिवर्तनों और स्त्री के जीवन एवं संवेदना को जो रचनात्मक अभिव्यक्ति दी है, उसके अध्ययन के माध्यम से समय की विसंगतियों एवं विडम्बनाओं के समझ को नया विस्तार दिया जा सकता है। नवदशकीय उपन्यासों में आतंक, कुण्ठा, विपरीत स्थितियों के बीच स्त्री–पुरूष संबंधो के द्वारा स्वातंत्र्य मूल्यों का चित्रण हुआ है। स्त्री–पुरूष संबन्धों में सर्वप्रमुख दृष्टि यह रही है कि समाज में स्त्री–पुरूष के लिए निर्धारित पृथक–पृथक मूल्यों परम्पराओं एवं मर्यादाओं को खुलकर चुनौती दी गयी है।

समाज मे विवाह को स्त्री जीवन का सबसे बड़ा उददेश्य एवं आदर्श माना गया है । किन्तु नवें दशक के भारतीय समाज में विवाह के सापेक्षिक व पारम्परिक स्थिति में मूल्य स्तर पर भारी बदलाव आया है। इस काल खण्ड के हिन्दी उपन्यासों में विवाह सम्बन्धी परिवर्तित दृष्टि का स्पष्ट प्रतिफलन देखा जा सकता है। अन्तरजातीय एवं प्रेम विवाह के नये मूल्य समाज में तेजी से विकसित हो रहे हैं। अब विवाह स्त्री के लिए पहली प्राथमिकता नहीं रह गयी है। उसका खुद का कैरियर ज्यादा महत्वपूर्ण हो गया है।

**टूटते मूल्य और प्रतिमान –**

"साहित्य एवं जीवन में अस्सी के पूर्व बच्चों, परिवार को लिए स्त्री का त्याग परिवार के प्रति समर्पण भाव का यशगान हआ है। परन्तु अब मातृत्व के पुराने मूल्य और प्रतिमान टूट रहे हैं।"[5] इस प्रकार नवदशकीय हिन्दी उपन्यासों में सचेत स्त्री मातृत्व के साथ–साथ स्वयं के बारे में, स्वयं की अस्मिता के बारे में सचेत ही नहीं पूर्ण रूप से जागरूक भी है। नवदशकीय उपन्यासों की स्त्री केवल पारम्परिक घरेलू भूमिकाएँ निभाने वाली स्त्री ही नहीं है बल्कि वह शिक्षित और नौकरी पेशा बनकर एक आत्म निर्भर स्त्री के रूप में परिभाषित हो रही है और जो पुरूष के समानान्तर अपनी पहचान बना रही है। उषा प्रियंवदा की नमिता ( शेषयात्रा ) इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है।

हिन्दी उपन्यास में पिछले पचास वर्षों में नारी की स्थिति में आये परिवर्तन का उतार चढ़ाव स्पष्ट ढंग से देखा जा सकता है। जिसकी शुरूआत स्वतंत्रता पश्चात् के दशक से हो जाती है। 'इस समय के उपन्यास लेखन में पुरूष और महिला लेखकों का एक नया वर्ग सामने आता है। देखते–देखते नारी जागरण, नारीवादी आन्दोलनों का रूप ले लेता है।[6] सातवें दशक से ही हिन्दी उपन्यास में ऐसी स्त्री–चरित्रों का चित्रण होने लगता है, जो शिक्षित और आर्थिक दृष्टि से आत्म–निर्भर होने पर भी पुरूष की संस्कारजन्य कुण्ठाओं की शिकार बनती हैं।

आठवें दशक के समापन के साथ 'नारी–विमर्श हिन्दी उपन्यास का प्रमुख विषय बनता दिखाई देता है तथा नवें दशक में नारी विमर्श शब्द केवल नारी मुक्ति से ही निरूपित होकर विवेचन, विचार, समीक्षा, परीक्षण, ज्ञान और कोशगत अर्थ में चरमबिन्दु को परिभाषित करता है। इस दृष्टि से गहरे अर्थ वाला यह शब्द नारी मुक्ति या नारी – स्वतंत्रता के साथ–साथ नारी की अस्मिता चेतना स्वाभिमान आदि तत्वों को भी अपने अंदर ले लेता है। इस दृष्टि से कृष्णा सोलती का 'मित्रो मरजारी' उपन्यास नीरस और पुराने मध्यमवर्गीय संस्कृति के विरूद्ध सर्वस्य दाँव पर लगा देने वाली स्त्री का प्रथम विद्रोह है।

इसके लगभग 28 वर्ष पश्चात् विवेकी राय ने 'समर शेष है (1988) में जयंती के रूप में ऐसी शिक्षित लड़की का चरित्र पेश किया जो सामाजिक मान्यताओं और रूढ़ियों को चुनौती देती हुई 'कुमारी सौभाग्यवती' बने रहने का विकल्प स्वीकारती है, तथा सदियों से दबे कुचले और शक्तिहीन किसानों मजदूरो और स्त्रियों में व्यवस्था से लड़ने की शक्ति उत्पन्न करती है।

**निष्कर्ष–**

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में हर तरफ मानवता का ह्रास होता जा रहा है। जगह–जगह कुण्ठाओं का जन्म हो रहा है। जन मानव क्षुब्ध एवं कुण्ठित है। प्रश्नों की बौछार लगी है किन्तु समाधान कोई भी

नहीं। आज भौतिकता के आकर्षण ने तथा उपलब्ध वैज्ञानिक साधनों ने एक ऐसा पर्यावरण तैयार कर दिया है जहाँ कटाव और भटकाव की स्थिति में व्यक्ति प्रतिक्षण मरता जीता है। फलस्वरूप इस भौतिकवादी युग ने मनुष्य को नई राहों की ओर मोड़ना प्रारम्भ कर दिया तथा इस आणविक युग का प्रत्येक व्यक्ति विभाजित व्यक्तित्व वाला हो चुका है। व्यक्तित्व के विभाजन, मूल्यों के विघटन आदि का चित्रण नवें दशक के उपन्यासों में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता हैं ।

नवदशकीय हिन्दी उपन्यास साहित्य की उपर्युक्त वर्णित दिशा एवं धारा में जहाँ पुरूष उपन्यासकारों का प्रमुख स्थान रहा है वहीं आलोच्य दशक में महिला उपन्यासकारों ने भी अपनी औपन्यासिक क्षमता का खुलकर प्रदर्शन किया है विशेष रूप से स्त्री विमर्श के संदर्भ में। नवें दशक की महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में प्रायः स्त्री वर्ग अधिक सजग और अधिकारपूर्ण है। भारतीय जीवन में अधिकांश परिवारों में लड़की का जन्म अशुभ एवं लड़के का जन्म शुभ माना जाता है, अतः नारी उपन्यासकारों ने इस बात को ध्यान में रखकर ही उपन्यासों में अपने वर्ग को अधिकार व सम्मान दिलाने का प्रयत्न किया है।[7] महिला उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में पात्रों के द्वारा समाज का परिवर्तन हर संभव स्थिति में चाहती हैं। स्वतंत्रता के पश्चात् हिन्दी उपन्यास साहित्य में महिला लेखन अपनी निजता का अतिक्रमण करते हुए, अपने लेखन में जीवन में के वैविध्य को उजागर करते हुये विभिन्न सरोकारों के साथ उपस्थित है। तथा स्त्री लेखन अपनी निजता से आरम्भ होकर व्यापक जीवन जगत से जुड़ते हुए अपने अनुभवों की सर्जनात्मकता में इनका प्रयोग कर रहा है। यदि विगत दो–तीन दशकों की इस रचनात्मक यात्रा की पड़ताल की जाए तो स्त्री–लेखन में सार्थक विकास दिखाई देता है समय के साथ रचनात्मकता में परिवर्तन और बदली हुई प्रकृति उसकी संवेदना एवं सरोकारों की व्यापकपता को प्रकट करती है।

**सन्दर्भ ग्रन्थ सूची**

1 स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी उपन्यासो के स्त्री पात्र रेखा पाण्डेय पृष्ठ–42
2 उपन्यासकी समकालीनता , ज्योतिष जोशी – पृष्ठ – 18
3 नवम् दशक केउपन्यास , संवेदना और शिल्प, डा0 कल्पना मालिक चंद, पृष्ठ –8
4 स्त्री–विमर्श विविध पहलू , सम्पादक – कल्पना वर्मा पृष्ठ – 100
5 स्त्री–विमर्श विविध पहलू , सम्पादक – कल्पना वर्मा पृष्ठ – 212
6 महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में वैचारिकता, डा0 राशि जैकब, पृष्ठ – 24
7 स्त्री–विमर्श विविध पहलू , सम्पादक – कल्पना वर्मा पृष्ठ –78

Corresponding Author: Pushp Lata
E-mail: pushp21lata@gmail.com
Received: 02 September 2024; Accepted 23 September 2024. Available online: 30 September, 2024
Published by SAFE. (Society for Academic Facilitation and Extension)
This work is licensed under a Creative Commons Attribution-Noncommercial 4.0 International License